आचार्यश्री अमितगतीचे

भावना - व्दात्रिंशतिका

आचार्यश्री अमितगतीचे हे स्तोत्र फारच सुंदर आहे . मन:शातीसाठी ते नित्य सकाळी किंवा झ ोपण्यापूर्वी अवश्य म्हणावे. परमात्म्याची वंदना, स्तुती, प्रार्थना ही जीवनाला परम शांत, निर्मळ भाव स्थिती प्राप्त करुन देते.

संपादिका

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थ - विपरीतवृतौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१ ॥

शरीरत: कर्त्तुमनन्तशक्ति विभिननमात्मानमपास्त - दोषम् ।
जिनेन्द्र कोषादिव खड्गयष्टि तव प्रसादेन ममास्तु शक्ति: ॥ २॥

दु:खे सुखे वैरिणि बन्धु- योगे वियोगे भवने वने वा ।
निराकृताशेष- ममत्व- बुध्दे समं मनो मेऽस्तु , नाथ ॥ ३ ॥

मुनीश लीनाविव कीलिताविव स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमो- धुनानौ हृदि दीपकाविव ॥ ४ ॥

एकेन्द्रियाद्या यदि, देव, देहिन: संचरता इतस्तत: ।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडितास्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥ ५ ॥

विमुक्ति - मार्ग - प्रतिकूल - वर्तिना मया कषायाक्ष - वशेन दुर्धिया ।
चारित्र - शुध्देर्यदकारि लोपनु तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं, प्रभो ॥ ६ ॥

विनिन्दनादोचन - गर्हणैरहं मनो- वच- काय - कषाय - निर्मितम् ।
निहन्मि पापं भव- दु:ख - कारणं भिषग्विषं मन्त्र - गुणैरिवाखिलम् ॥ ७ ॥

अतिक्रमं यव्दिमतेर्व्यतिक्रमं जिनातिचांर सुचरित्र - कर्मण: ।
व्यधामनाचारमपि प्रमादत: प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुध्दये ॥ ८ ॥

क्षति मन:शुध्दि - विधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शील - विधेर्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचांर विषयेषु वर्तनं वदन्त्यनाचामिहातिसक्ताम् ॥ ९ ॥

यदर्थ - मात्रा - पदवाक्य इ हीनं मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
चिन्तामणि चिन्तित - वस्तु - दाने त्वां वन्दमानस्य ममास्तु, देवि ॥ १० ॥

बोधि: समाधि: परिणाम - शुध्दि: स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रै: ।
यो गीयते वेद - पुराण- शास्त्रै: स देव - देवो ह्रदये ममास्ताम् ॥ ११ ॥

निषूदते यो भव - दु:ख जालं निरीक्षते यो जगदन्तरालम् ।
योऽर्गतो योगि - निरीक्षणीय: स देव - देवो ह्रदये ममास्ताम् ॥ १२ ॥

यो दर्शन - ज्ञान -सुख - स्वभाव: समस्त - विकार - बाह्य: ।
समाधिगम्य: परमात्म - संज्ञ: स देव- देवो ह्रदये ममास्ताम् ॥ १३ ॥

निषूदते योगी भव- दु:ख - जाल निरीक्षते यो गदनतरालम् ।
योऽन्तर्गतो योगि - निरीक्षणीय: स देव - देवो ह्रदये ममास्ताम् ॥ १४ ॥

विमुक्ति - मार्ग - प्रतिपादको यो, यो जन्म - मृत्यु - व्यसनाद्यतीत: ।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्क: स देव - देवो ह्रदये ममास्तम् ॥ १५ ॥

क्रोडीकृताशेष- शरीरि- वर्गा रागादयो यस्य न सन्ति दोषा: ।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपाय: स देव- देवो ह्रदये ममास्ताम् ॥ १६ ॥

यो व्यापको विश्व- जनीनवृत्ते: सिध्दो विबुध्दो धुत- कर्म - बन्ध: ।
ध्यातो धुनीत सकलं विकांर स देव- देवो ह्रदये ममास्ताम् ॥ १७ ॥

न स्पृश्यते कर्म- कलंक- दोषैर्यो ध्वान्त- संघैरिव तिग्म- रश्मि: ।
निरत्र्जनं नित्यमनेकमेकं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

विभासते यत्र मरीचिमाली न विद्यमाने भुवनावभसि ।
स्थात्म-स्थितं बोधमय-प्रकाशं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १९ ॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्
येन क्षता मन्मथ- मान- मूर्च्छा- विषाद- निद्रा- भय- शोक- चिन्ता: ।
क्षतोऽनलेनेव तरु-प्रपत्र्चस्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी विधानतो नो फलको विनिर्मित: ।
यतो निरस्ताक्ष- कषाय- विव्दिष: सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मत: ॥ २२ ॥

न संसतरो भद्र समाधि- साधनं न लोक- पूजा न च संघ- मेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्म- रतो भवानिशं विमुच्य सर्वामपि बाह्य- वासनाम् ॥ २३ ॥

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था भवामि तेषां न कदाचनाहम्
इत्थं विनिकश्चत्य विमुच्य बाह्यं स्वस्थ: सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै ॥ २४ ॥

आत्मानमात्मन्यवलोक्यमानस्त्वं दर्शन- ज्ञानमयो विशुध्द: ।
एकाग्रचित्त: खलु यत्र तत्र स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥ २५ ॥

एक: सदा शाश्वतिको ममत्मा विनिर्मल: साधिगम- स्वभाव: ।
बहिर्भवा: सन्त्यपरे समस्ता: न शाश्वता: कर्म- भवा: स्वकीया: ॥ २६ ॥

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्ध्दं तस्यास्ति किंपुत्र- कलत्र- मित्रै: ।
पृथक्कृते चर्मणि रोम- कूपा: कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥ २७ ॥

संयोगतो दु:खेमनेकभेदं यतोऽश्नुते जन्म-वने शरीरी ।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो पिपासुना निर्वतिमात्मनीनाम् ॥ २८ ॥

सर्व निराकृत्य विकल्प- जालं संसार- कानतार- निपात- हेतूम ।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्म- तत्वे ॥२९ ॥

स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयंकृतं कर्म निरर्थक तदा ॥ ३० ॥

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानस: परो ददातिति विमुञ्च शेमुषीम् ॥ ३१ ॥

यै: परमात्माऽमितगति- वन्द्य: सर्व- विविक्तो भृशमनवद्य: ।
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते मुक्ति - निकेत्तं विभव- वरं ते ॥ ३२ ॥

इति व्दात्रिंशता वृत्तै: परमात्मानमीक्षते ।
योऽनन्यगत चेतस्को यात्यसौ पदमव्ययम् ॥३३ ॥

बुधजनकृत

बारह भावना

गीता छंद

जेती जगत में वस्तु तेती अथि परणमती सदा ।
परणमनराखन नाहिं समरथ इंद्र चक्री मुनि कदा ॥

सुतनारि यौवन और तनधन जान दामिनी दमकसा ।
ममता न कीजै धारि समता मानि जलमे नमकसा ॥ १ ॥

चेतन अचेतन सब परिग्रह हुआ अपनी थिती लहै ।
सो रहै आप करार माफिक अधिक राखे ना नहै ॥
अब शरण काकी लेयगा जब इंद्र नाहीं रहत है ।
शरण तो इक धर्म आतम जाहि मुनिजन गहत है ॥ २ ॥

सुर नर नरक पशु सकल हेरे कर्म चेरे बन रहे ।
सुख शासता नहिं भासता सब विपति में अतिमान रहे

दुख मानसी तो देवगति मे नारही दुख ही भरे ।
तिर्यंत मनुज वियोग रोगी शोक संकट में जरे ॥ ३ ॥

क्यों भूलता शठ फूलता है देख परिकर थोकको ।
लया कहां ले जायगा क्या फौज भुषण रोक को ॥
जनमत मरत तुझ एकले को काल केता हो गया ।
संग और नाही लगे तेरे सीख मेरी सुन भया ॥ ४ ॥

इंद्रीनते जाना न जावै तू चिदानंद अलक्ष है ।
स्वसंवेदन करत अनुभव होत तब परत्यक्ष है ॥

तन अन्य जड जानो सरुपी तू अरुपी सत्य है l
कर भेदज्ञान सो ध्यान धर निज और बात असत्य है ll ५ ll

क्या देख राचा फिरै नाचा रुपसुंदरतन लहा l
मलसूत्र भांडा भरा गाढा तू न जाने भ्रम गहा ll
क्यों सूग नाही लेत आतुर क्यों न चातुरता धरै l
तुहि काल गटकै नाहि अटकै छोड तुझको गिर परै ll ६ ll

कोई खरा अरु कोइ बुरा नहिं वस्तु विविध स्वभाव है l
तू वृथा विकल्प ठान उर में करत राग उपाव है ll
यूं भाव आस्त्रव बनत तू ही द्रव्य आस्त्रव सुन कथा l
तुझ हेतूसे पुद्‌गल करम न निमित्त हो देते व्यथा ll ७ ll

तन भोग जगत सरुप लख डर भविक गुर शरणा लिया l
सुन धर्मधारा, भर्म गारा हर्षि रुची सन्मुखभया l
इंद्री अनिंदी दाबि लीनी त्रस रु थावर बंध तजा l
तब कर्म आस्त्रव व्दार रोकै ध्यान निज मै जा सजा ll ८ ll

तज शल्य तीनों वरत लीनों बाह्याभ्यंतर तप तपा l
उपसर्ग सुरनर जड पशुकृत सहा जिन आतम जपा ll
तब कर्म रसविन होन लागे द्रव्यभावन निर्जरा l
सब कर्म हरकै मोक्ष वरकै रहत चेतन ऊजरा ll ९ ll

बिच लोक नंतालोकमांहीं लोकमें द्रब सब भरा l
सब भिन्न भिन्न अनादि- रचना निमित्तकारणकी धरा ll
जिनदेव भाषा नित प्रकाशा भर्मनाशा सुन गिरा l
सुर मनुष्य तिर्यक नारकी हुई उर्ध्व मध्य अधोध्दरा ll १० ll

अनंतकाल निगोद अटका ९ास थावर तनधरा ।
भू वारितेजबयार व्हैकैबेइंद्रिय त्रस अवतरा ॥
फिर हो तिइंद्री पंचेद्री मनविन बना ।
मनयुत मनुषगतिहोन दुर्लभज्ञान अति दुर्लभ घना ॥ ११ ॥

जिय ! न्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाही जपजपा ।
तप नग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाही तपतपा ॥
वर धर्म निज आतम स्वभावी ताहि बिन सब निष्फला ।
बुधजन धरम निज धारलीना तिनहिं कीना बसभला ॥ १२ ॥

दोहा

अथिराशरणसंसार है एकत्व अनित्यहि जान ।
अशुचि आस्त्रव संवरा निर्जरा लोक बखाण ॥ १३ ॥

बोध रु दुर्लभ धरम ये , बारह भावन जान ।
इनको भावै जो सदा क्यों न लहै निर्वान ॥ १४ ॥

अपूर्व सल्लेखनेपूर्वक देहत्यागाच्या भावनेने ओली- चिंब अशी

समाधि - भावना

प्रत्येक जैन स्त्री- पुरुषाची भावना असते की आपले जीवन समाधीपूर्वक म्हणजे सल्लेखनेपूर्वक संपन्न व्हावे. जीवन मंदिराचे शिखर म्हणजे स्वतःचा मृत्यु- महोत्सव, स्वतःच अनुभवणे. मरण समयी प्रत्येक श्रावकाने कोणता विचार, कोणती भावना ह्रदयात बाळगावी , याचे सुंदर चित्रण या हिंदी काव्यात अनुपम शैलीने केले आहे. शेकडो मुनींनी मृत्यूचा कसा स्वीकार केला, आत्मविजयाची पताका धेऊन ते सारे कसे अग्रेसर झाले , याचा सुंदर आलेख या भावनापूर्ण गीतात आहे -

संपादिका

बंदौ श्री अरंहत परमगुरु, जो सबको सुखदाई ।
इस जग में दुख जो मैं भुगतेश सो तुम जानो, राई ।
अब मैं अरज करु, प्रभु तुमसे, कर समाधि उरमाही ।
अंतसमय में यह वर मांगू, सो दीजै जगराई ॥ १ ॥

भवभव में तन धार नये, मैं भवभव शुभ संग पायो ।
भव भव मैं नृपरिध्दि लई मै मातपिता सुतथाया ।
भव भव में तन पुरुषतनो धर, नारी हूं तन लीनो ।
भव भव में मै भयो नपुसंक आतमगुण नहीं चीनो ॥ २ ॥

भव भव में सुरपदवी पाई, ताकेसुख अति भोगे ।
भव भव में गति नरकतनी धर, दुख पाये विधी योगं ॥
भव भव मे तिर्यच योनिधर , पायो दुख अति भारी ।
भव भव मे साधर्मीजन को, संग मिल्यो हितकारी ॥ ३ ॥

भव भव मे जिनपूजन कीनी सुपात्रहि दीनो ।
भव भव मे समवसरण मे , देख्यो जिनगुण भीनो ॥
एती वस्तु मिली भवभव मे सम्यक्गुण नहिं पायो ।
ना समाधियुत मरण कियो मे ताते जग भरमायो ॥ ४ ॥

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहि कीनो ।
एकबार हूं सम्यक्युत में, निज आतम नहिं चीनो ॥
जो निजपर को ज्ञान होय तो, मरणसमय दुख कांई ।
देह विनाशी , मै निजभासी , जोति स्वरुप सदाई ॥५ ॥

विषयकषायनकेवश होकर, देह आपनो जान्यो ।
कर मिथ्यासरधान हियेविच, आतम नाहिँ पिछान्यो ॥
यों कलेश हियधार मरणकर, चारो गति भरमायो ।

सम्यक्दर्शन- ज्ञान- चरन ये हिरदे मे नहिं लायो ॥ ६ ॥

अब या अरज करुं प्रभू सुनिये, मरणसमय यह माँगो ।
रोग जनित पीडा मत होवो, अरु कषाय मत जागो ॥
ये मुझ मरणसमय दुखदाता, इन हर , सता कीजे ।
जो समाधियुतमरण होय मुझ , अरु मिथ्यागद छीजै ॥ ७ ॥

यह तन सता कुधातमई है, भीतर ही घिन आवे ।
चर्मलपेटी उपर सौ है , भीतर विष्टा पावे ॥
अतिदुर्गध अपावनसा यह मूरख प्रीती बढावे ।
देह विनासी, जिय अविनासी, नित्यस्वरुप कहावै ॥ ८ ॥

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, याते प्रीति न कीजै ।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब या मै छीजै ॥
मृत्यू होनसे हानि कौन है, याको भय मत लायो ।
समसाते जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ॥ ९ ॥

मृत्यु मित्र उपकारी तेरी , इस अवसर केमाहीं ।
जीरन तनसे देत नयो यह, या सम साहू नाही ॥
या सेती इस मृत्युसमयपसर, उत्सव अति ही कीजे ।
क्लेशभाव को त्योग सयाने समता भाव घरी जै ॥ १० ॥

जो तुम पूरब पुण्य किये है, तिन को फल सुखदाई ।
मृत्युमित्र बिन कौन दिखावे, सर्गसंपदा भाई ॥
रागरोषको छोड सयाने, सात व्यसन दुखदाई ।
अंतसमयमें समता धारो, परभवपंथसहाई ॥ ११ ॥

कर्म महादुठ वैरी मेरो, तासेती दुख पावे ।

तनपंजरमे बंध किया मोहि, यासो कौन छुडावे ॥
भूख तृषा, दुख आदि अनेकन, इसही तनमे गाढे ।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तनपिंजरसो काढे ॥ १२ ॥

नाना वस्त्राभूषण मैने इस तनको पहनाये ।
गंधसुगंधित अतर लगाये, षट्रस असन कराये ॥
रातनिा मे दास होयकर , सेवकरी तनकेरी ।
सो तन मेरे काम न आयो , भूल रहयो निधि मेरी ॥ १३ ॥

मृत्युराय को शरण पाय तन, नुतन ऐसो पाऊं ।
जामें सम्यक्ररतन तीन लहि आठो कर्म खपांऊ ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी नाहिं सु या जगमाहीं ।
मृत्युसमयमे ये ही परिजन, सबहीं है दुखदाई ॥ १४ ॥

यह सब मोह बढावनहारे, जियको दुर्गतिदाता ।
इनसे ममता निवारो, जियरा जो चाहो सुखमाता ॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगी इच्छा जेती ।
समता धरकर मृत्यु करो, तो पावो संपत्ति ते ती ॥ १५ ॥

चौआराधनसहित प्राण तज, तो ये पदवी पावो ।
हरि, प्रतिहरी, चक्री, तीर्थेश्वर स्वर्गमुकति मे जाओ ॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दात, तीनो लोक मंझारै ।
ताको पाय क्लेश करो मत जन्म जवाहर हारे ॥ १६ ॥

इस तनमे क्या राचे जियरा, दिन दिन जीरन हो है ।
तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ॥
पांचो इंद्री शिथिल भये अब, स्वास शुध्द नहीं आवै ।
तापर भी ममता नहिं छोडे, समत उर नहिं लावै ॥ १७ ॥

मृत्युराज उपकारी जियको, तनसो तोडि छुडावै।
नातर या तनबंदीगृह में पऱ्यो पऱ्यो बिललावे ॥
पुद्गलकेपरमाणु मिलकेपिंडरुप बत रुपी आई।
मुरत मै, अमूरति ज्ञानज्योति गुमखासी ॥ १८ ॥

रोगशोक आदिक जो वेदन से पद्गुललारे।
मै तो चेतन, व्याधि बिना नित है, सो भाव हमारे ॥
या तनसो इस क्षेत्र संबंधौ, कारण आजे बनो है।

खान पान दे, याको पोष्यो, अब सम भाव इठयो है ॥ १९ ॥

मिथ्यादर्शन आत्माज्ञान बिन, यह तन अपना जान्यो।
इंद्रिभोग गिनै सुख मैने, आपो नाहिं पिछान्यो ॥
तनविनशनतें नाश जानि निज, यह अयान सुखदाई ।
कुटू आदिको अपना जान्यो भूल अनादी छाई ॥ २० ॥

अब निज भेद जथारथ समझ्यो, मै हु ज्योतिस्वरुपी ।
उपजै बनिसै सो यह पुद्गल जान्यो याको रुपी ॥
इष्टऽनिष्ट जेते सुखदुख है, सो सब पुद्गल सागै ।
मैं जब अपनो रुप विचारो , तब वे सब दुख भागे ॥ २१ ॥

बिन समता तनऽनंत घरे मे तिनमे ये दुख पायो।
शस्त्रघाततेऽनंत बार मर, नाना योनि भ्रमायो ॥
बार अनंतहि अग्निमाहिं जर मूवो, सुमती न लायो।
सिंह, व्याध्र, अहि, अनंत बार मुझ नाना दुख दिखाओ ॥ २२ ॥

बिन समाधि ये दुख लहै मै, अब उर समता आई ।

मृत्युराज को भय नहिं मानो, देवे तन सुखदाई ।
यातै जब लग मृत्यु न आवै , तब लग जपतप कीजै ।
जपतप बिन इस जगमाहीं कोई भी ना सीजै ॥ २३ ॥

सवर्गसंपदा तपसो पावे, तपसो कर्म नसावे ।
तपहि सो शिव कामिनि पति है, यासो तप चित लावै ॥
अब मै जानी समता बिन मुझे कोऊ नहीं सहाई ।
मात, पिता, सुत, बांधव, तिरिया ये सब है दुख दाई ॥ २४ ॥

मृत्युसमय में मोह करे ये ताते आरत हो है ।
आरतते गति नीची पावै, यो लख मोह तज्यो है ॥
और परीग्रह जेते जगमें तिनसो प्रीत न कीजे ।
परभवमें ये संग न चाले, नाहक आरत कीजे ॥ २५ ॥

जे जे वस्तु लखत है ते पर तिनसो नेह निवारो ।
पर गती में थे साथ न चालै, ऐसो भाव विचारो ॥
जो परभव में संग चले तुझ तिनसो प्रीीत सु कीजै ।
पंच पाप तज समता धारो , दान चार विध दीजै ॥ २६ ॥

दशलक्षण धरो उर, अनुकंपा उर लावो ।
षोडषकारण नित्य विचारो , व्दादश भावत भावो ॥
चारो परवी प्रोषध कीजै , अशने रात कों त्यागो ।
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसो अनुरागो ॥ २७ ॥

अंत समयमें यह शुभ भावहि, होवे आनि सहाई ।
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावे, ऋध्दि देहिं अविकाई ॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमे समता लाके।

जासेती गति चार दूरकर , बसहू मोक्षपुर जाकै ॥ २८ ॥

मनथिरता करकेतुम चिंतो, चौ आराधन भाई ।
ये ही तोको सुखकी दाता, और हितु नाहीं कोई ॥
आगे बहु मुनिराज भये है, तिन यही थिरता भारी ।
बहू उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उरधारी ॥ २९ ॥

तिनमे कछुइक नाम कहूं मै सो सुन जिय चित लाके।
भावसहित अनुमोदे तासो, दुर्गति होय न ताके॥
अरु समता निज उरमे आवं , भाव अधीरज जावे ।
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये बिच लावै ॥ ३० ॥

धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि कैसे धीरजधारी ।
एक श्यालनी जुगबच्चासह पाव भख्यो दुखकारी ॥
यह तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ३२ ॥

देखो गजमुनिकेशिर उपर , विप्र अगिनि बहु बारी ।
शीश जले जिम लकडो तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी ।
यह उपसार्ग सह्ययो धर थिरता आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ३३ ॥

सनत्कुमार मुनीकेतन में, कुष्ट वेदना व्यापी ।
छिन्न छिन्न तन तासो होवो, तव चिंत्यो गुण आपी ॥
तो यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तूमरे जिय कौन दुख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ३४ ॥

ललित घटादिक तीस दोय मुनि कौशांबीतट जान्तो ।
नदिमें मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहीं मानो ॥

यह उपसर्ग सह्यो धर थ्रिरता, आराधन चित्तधारी l
तो तुमरे जिय कौन दुख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ३८ ॥

श्री दत्त मुनिको पूर्व जन्मकी वैरी देव सु आके l
विक्रिय कर दुख शीततनो सो, सह्यो साध मन लाके ll
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता आराधन चित्तधारी l
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ३९ ॥

वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर ध्यान धरो मन लाई l
सूर्यधाम अरु उष्ण पवनकी , वेदन सहि अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता , आराधन चित्तधारी l
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ४० ॥

अभयधोषमुनि काकंदीपुर महावेदना पाई l
वैरी चंडने सब तन छेद्यो, दुखी दीनो अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित्तधारी l
तो तूमरे जिय कौन दु:ख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ४१ ॥

विद्युत्चरने बहु दुख पायो, तो भी धीर न त्यागी l
शुभभावनसों प्राण तजे निज, धन्य, और बडभागी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्तधारी l
तो तुमरे जिय कोन दुख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ४२ ॥

पुत्र चिलाती नामा मुनिको , वैरीने तन घाता l
मोटे मोटे कीट तन, तापर निज गुण राता ll
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्तधारी l
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है , मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ४३ ॥

अभिनंदन मुनि आदि पाँचसौ, धानि पेलि जू मारे ।
तो भी श्रीमुनि समजताधारी , पूरब कर्म बिचारे ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्तधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ४५ ॥

चाणकमुनि को घरमाहीं मूंद अगनि परजाल्यो ।
श्री गुरु उर समभाव धारकें अपनो रुप सम्हाल्यो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्तधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है च मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ४६ ॥

सात शतक मुनिवर दुख पायो, हथनापुरमें जानो ।
बलिब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥
यह उपसर्ग सह्योधर थिता, आराधन चित्तधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है ?मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ४७ ॥

लोहमयी आभूषण गडके, ताते कर पहराये ।
पांचो पांडव मुनि केतन में तो भी नाहिं चिगाये ।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्तधारी ।
तो तूमरे जिय कौन दु:ख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ४८ ॥

और अनेक भये इस जगमें, समतारसकेस्वादी ।
वे ही हमको हो सुखदाता , हरहै हेव प्रमादी ॥
सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरण, तप, ये आराधन चारी ।
ये ही मोको सुखकी दाता , इन्हे सदा उर धारी ॥ ४९ ॥

यों समाधि उरमाहो लावो, अपना हित जो चाहो ।
तज ममता अरु आठो मदका , ज्योतिस्वरुपी ध्यावो ॥
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामांतर केकाजे ।

सो भी शकुन विचारै , नीकैशुभ केकारण सातजै ॥ ५० ॥

मातपितादिक सर्व कुटुम सब नीकेशकुन बनावे ।
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावे ॥
एक ग्राम जाने की कारण करे शुभाशुभ सारे ।
जब परगती को करत पयानो, तब नहीं सोचो प्यारे ॥ ५१ ॥

सर्व कुटूम जब रोवन लागे, तोहि रुलावे सारे ।
ये अपशकून करै सुन तो को , तू यो क्यों न विचारै ॥
अब परगति को चालत बिरिया, धर्म ध्यान उर आनो ।
चारो आराधन आराधो मोहतनो दुख हानो ॥ ५२ ॥

हो निश्ल्य तजों सब दुविधा, आतमराम सुध्यारो ।
जब परगति करहु पयानो , परम तत्व उर लावो ॥
मोहजाल को काट पियारे, अपना रुप विचारो ।
मृत्युमित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥ ५३ ॥

दोहा

मृत्यु महोंत्सव पाठको पढो सुनो बुधिवान ।
सरधाधर नित सुख लहो, सुरचंद शिवथान ॥ ५४ ॥

पंच उभय नव एक नभ संवत् सो सुखदाय ।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्रो पाठ मनलाय ॥ ५५ ॥

कवी श्री सूरचंद यांनी रचलेली ही समाधि - भावना अर्थात् मृत्यु - महोत्सव भावना पूर्ण झ
ाली.